11

ब्रह्म

ध्यान दें:

ब्रह्म सत्य है तथा जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म से अपर नहीं होकर ब्रह्म ही है, इस प्रकार का अद्वैतवेदान्त सिद्धान्त का सार है। यह दिखाई देने वाला जगत् नाम तथा रूप के द्वारा जितना भी व्याप्त है वह सब ब्रह्म का ही स्वरूप है। सृष्टि से पूर्व में केवल ब्रह्म ही था "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" इस प्रकार की श्रुतियाँ ब्रह्म का बार बार निरूपण करती हैं। तथा जीव भी स्वरूपत: ब्रह्म ही होता है। अज्ञान के कारण अपने स्वरूप को नहीं जानता हुआ वह आत्मा को बद्ध मानने लगता है। तथा सुख दु:खादि का अनुभव करने लगता है। श्रवण मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा अखण्डाकार चित्तवृत्ते के उदय होने से अज्ञान का नाश होता है और जीव अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। इस प्रकार से वह अपने स्वरूप को प्राप्त करने बाद वैसा ही हो जाता है। जैसे गले में स्थित आभूषण को अज्ञानवश भूल जाने पर उसे भ्रमित व्यक्ति को जब कोई और व्यक्ति बताता है तब फिर से वह प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञान के कारण अपने स्वरूप को नहीं जानता हुआ जीव के अखण्डाकार चित्तवृत्ति के उदय हो जाने से अज्ञान का नाश हो जाने पर वह अपने स्वरूप को प्राप्त करता ही है।

लेकिन जो ब्रह्मतत्व को केन्द्रित करके सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र वर्तमान में है उसका ब्रह्म स्वरूप है यह स्वत: जानना चाहिए। लक्षण प्रमाण के द्वारा वस्तु सिद्धि होने पर सिद्ध वचनों का अनुसरण करके ब्रह्म के प्रतिपादन के लिए उसके लक्षणों का विचार करना चाहिए। इसलिए इस पाठ में ब्रह्म के लक्षण हमारे द्वारा आलोचित किए गये है।

लक्षण दो प्रकार के होते है स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण। इस पाठ में ब्रह्म के दोनों प्रकार के लक्षणों का आलोचन किया जाएगा। दो प्रकार का ब्रह्म श्रुतियों में बताया गया है- सगुण तथा निर्गुण। इस पाठ में सगुण ब्रह्म के विषय में तथा निर्गुण ब्रह्म के विषय में विस्तारपूर्वक आलोचन किया जाएगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- ब्रह्मपद के अर्थ को, जानने में;
- लक्षणों के दो प्रकार ज्ञान को प्राप्त करने में;
- ब्रह्म के स्वरूप के लक्षण को जानने में;

ध्यान दें:

- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण को, जानने में;
- निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप को, जानने में;
- सगुण ब्रह्म के स्वरूप को, जानने में;

ब्रह्म पद का अर्थ

'बृहि वृद्धौ' इस वृद्ध्यर्थक बृहधातु से 'बृंहेर्नोऽच्च' इस सूत्र के द्वारा

कर्ता अर्थ में मनिन् प्रत्यय करने पर ब्रह्मशब्द निष्पादित होता है। अर्थात् जो बढ़ता है वह ब्रह्म कहलाता है। दूसरा अर्थ जो प्रजा को बढाता है वह ब्रह्म है। यह निरतिशय महत्वलक्षणवृद्धिमत्व से तथा सर्वव्यापकत्व से ब्रह्म कहलाता है, इस प्रकार के अन्वर्थ का अभिधान किया जाता है। इसलिए भामतीकार वाचस्पतिमिश्र ने यह उद्धृत किया है - बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद्वात्मैव ब्रह्मेति गीयते इति। महाभारत में शान्ति पर्व में भी कहा गया है - "बृहद् ब्रह्म महच्चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः" इति। (बृहत् ब्रह्म तथा महत् शब्द पर्यायवाची है) इसलिए जिससे बृहद् कुछ भी नहीं है, तथा जो देहादि का परिणामयिता है वह ब्रह्म है। देश काल तथा वस्तु से अपरिच्छिन्न होने के कारण उसकी सभी जगह व्यापकता है। सभी जगह विद्यमान होने से तथा तीनों कालों में होने से तथा सभी वस्तुओं में होने से ब्रह्म का देश काल तथा वस्तुओं से परिच्छेद सम्भव नहीं होता है।

ब्रह्म ही आत्मा है। 'अत सातत्यगमने' इस सातत्यगमनार्थक अत्-धातु से 'सातिभ्यां मनिन्मनिणौ' इस सूत्र से कर्ता अर्थ में मनित्-प्रत्यय होने पर आत्मन् यह शब्द निष्पादित होता है। अतति सन्ततभावेन जाग्रदादिसर्वावस्थासु अनुवर्तते इत्यात्मा (अर्थात् जो सतत् भाव से जाग्रत् आदि सभी अवस्थाओं में निरन्तर चलती है वह आत्मा कहलाती है। इसके अलावा भी आप-धातु से आपूर्वकाद्-दाधातु से तथा अद्-धातु से आत्मशब्द की निष्पत्ति प्रतिपादित होती है। सुरेश्वराचार्य ने बृहदारण्यक भाष्यवार्त्तिक में कहा है

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कथ्यते॥ इति।

इसलिए जो सभी को प्राप्त करता है, सभी को ग्रहण करता है, सभी का भक्षण करता है तथा जो हमेशा विराजमान रहता है वह आत्मारूपी अर्थ सिद्ध होता है। इसके द्वारा आत्मा का सर्वव्यापकत्व सर्वग्राहत्व तथा सर्वनाशकत्व तथा सतत् विद्यमानत्व का ग्रहण होता है।

लक्षण का स्वरूप

लोक में यह स्थिति है कि लक्षणप्रमाण के द्वारा ही वस्तु की सिद्धि होती है न की उद्देश्यमात्र से। इसलिए उस ब्रह्म का लक्षण क्या है इसका सर्वप्रथम विचार करना चाहिए। लक्ष्यमात्र में विद्यमान असाधारण धर्म ही लक्षण कहलाता है। जैसे सास्नावत्व गो का लक्षण है। वह लक्षण भी दो प्रकार का होता है। स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण। तो कहते हैं कि स्वरूप लक्षण किसे कहते है तब उत्तर देते हुए वेदान्त परिभाषा में धर्मराजध्वरीन्द्र ने कहा है "स्वरूपमेव लक्षणं स्वरूपलक्षणम्" इति। अर्थात् स्वरूपत्व होने पर जो व्यावर्तक हो वह स्वरूप लक्षण का तात्पर्य है। जैसे मधुरत्व ही शक्कर का स्वरूप है। शक्कर मधुरत्व से भिन्न नहीं होती है उससे भिन्न में लवणादि होते हैं। इसलिए मधुरत्व शक्कर का स्वरूपलक्षण है। जितने समय तक शक्कर रहेगी उतने ही समय तक शक्कर का वह मधुरत्व स्वरूप भी रहेगा। क्योंकि कोई भी वस्तु कभी भी अपने स्वरूप का त्याग नहीं करती है। तटस्थ लक्षण के विषय में वेदान्त परिभाषा में कहा है "तटस्थलक्षणं तु यावल्लक्ष्यकालम् अनवस्थितत्वे सति यद् व्यावर्तकम्" जितने समय तक लक्ष्य की स्थिति रहती है उतने समय तक लक्ष्य में जो अविद्यमान लक्ष्य भी उससे

ध्यान दें:

भिन्न से व्यावर्तक होता है वह तटस्थ लक्षण कहलाता है। जैसे गन्धत्व पृथ्वी का लक्षण है। नैयायिकों के मत में उत्पन्न द्रव्य उस क्षण गुणरहित तथा अक्रिय रहता है। इसलिए उत्पन्न पृथ्वी गन्ध तथा गुण रहित होती है। उत्तपत्ति के उत्तरक्षण में पृथ्वी में समवायसम्बन्ध से गुण उत्पन्न होता है यह नैयायिकों का मत है। इसलिए गन्धगुण पृथ्वी में सतत् अविद्यमान होते हुए भी अन्य जलादि के द्वारा व्यावर्त होता है इसलिए गन्ध पृथ्वी का तटस्थलण है।

इसी प्रकार उपनिषदों से ही ब्रह्म का स्वरूपलक्षण तथा तटस्थलक्षण जानना चाहिए। वह ब्रह्म उपनिषदों से भी परे है इसलिए उपनिषदों में कहा है "उस औपनिषद् पुरुष से पूछता हूँ, वह उपनिषद् स्वरूप भी है" इस प्रकार के श्रुति वाक्यों में उपनिषद् मात्र जानने योग्य कथन से उस ब्रह्म का स्वरूपलक्षण क्या है तथा तटस्थ लक्षण क्या है इसका नीचे आलोचन किया जा रहा है।

पाठगत प्रश्न 11.1

1. ब्रह्मपद की व्युत्पत्ति क्या है?
2. ब्रह्मशब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ क्या है?
3. आत्मा पद की व्युत्पत्ति क्या है?
4. आत्म पद का व्युत्पत्तिगत अर्थ क्या है?
5. स्वरूप लक्षण किसे कहते हैं?
6. तटस्थ लक्षण किसं कहते हैं?
7. तटस्थ लक्षण का उदाहरण क्या है?
8. ब्रह्मा का स्वरूपलक्षण तथा तटस्थ लक्षण कहाँ से जाना जा सकता है?

ब्रह्म का स्वरूपलक्षण

ब्रह्मा के स्वरूप के लक्षण का प्रतिपादन करने वाले बहुत सारे श्रुति वाक्य हैं। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म इत्यादि श्रुतिवाक्यों में ब्रह्म के स्वरूप के लक्षण का आलोचन किया गया है। इस प्रकार से ब्रह्म सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनन्तस्वरूप तथा आनन्दस्वरूप है। जैसे प्रकृष्टप्रकाशकचन्द्रः इत्यादि वाक्यों में प्रकृष्टप्रकाश चन्द्र के स्वरूप के अन्तर्भूत होता है वैसे ही सत्यज्ञानादि ब्रह्म के स्वरूप ही होते हैं।

तैत्तरीय उपनिषद् के भाष्य में शङ्कराचार्य के द्वारा ब्रह्मलक्षण के विचारप्रसङ्ग में कहा गया है की सत्य ज्ञान तथा अनन्त पदादि ब्रह्म के विशेषण नहीं है। ब्रह्म एक ही है ब्रह्म में सजातीय विजातीय वस्तुओं के अभाव से विशेषणों की व्यर्थता सिद्ध होती है। इसलिए कहा गया है सम्भव तथा व्यभिचार से विशेषण अर्थवान् होता है।इसलिए सत्य ज्ञान तथा अनन्त पद ब्रह्म का लक्षण ही है। लक्षण ही लक्ष्य में सभी और से व्यावर्त होता है। विशेषण विशेष्य में सजातीयों से व्यावर्त होता है। इन सत्यज्ञान तथा अनन्त पदों की परस्पर अनपेक्षा से साक्षात् ब्रह्म पद में ही अन्वय होता है। उसके द्वारा सत्य ब्रह्म, ज्ञान ब्रह्म तथा अनन्तब्रह्म ब्रह्म के लक्षण फलित होते है। उससे समानाधिकरण्यवश से सत्यज्ञान तथा अनन्तपदों का परस्पर अन्वय होता है। यह पद्धति पार्ष्ठिकान्वय के रूप में प्रसिद्ध है। इस प्रकार से तथाहि अरुणया पिङ्गाक्ष्या गवा एकहायन्या सोमं क्रीणाति इति वाक्ये अरुणात्व-पिङ्गाक्षित्व-एकहायनित्वादिगुणानां प्रथमं क्रियायामन्वयो भवति। गोपदं करणत्वेन क्रियया अन्वेति। गोद्रव्यस्य क्रयक्रियया अन्वयः उपपद्यते, परन्तु

ध्यान दें:

अरुणत्वादिगुणानां क्रिययायामन्वयो नोपपद्यते। अतो विचार्य गुणा: द्रव्यमाश्रित्य एव क्रियया अन्वेति इति निश्चीयते। एकस्मिन गोद्रव्ये विद्यमानत्वात् अरुणात्वपिङ्गाक्षित्वैकहायनित्वानां परस्परमन्वयो भवति।

इसलिए सत्यज्ञान तथा अनन्तादि का ब्रह्म से पृथक् अन्वय करने पर सत्य होने पर विचार के द्वारा परस्पर अन्वितों से ब्रह्म की प्रतिपादकता का ज्ञान होता है।

जिस रूप में जिसका निश्चय किया जा चुका है वह व्यभिचरित नहीं होने वाला रूप सत्य कहलाता है। स्व स्वरूप व्यभिचार विकारों में देखे जाते हैं। उसी प्रकार दूध के स्वरूप परिवर्तन के कारण ही दही उत्पन्न होता है। इसलिए दही से दूध का सत्यत्व सम्भव नहीं है। इसलिए ब्रह्मा के सत्यत्व कथन से विकारों के द्वारा ब्रह्मा की विलक्षणता स्पष्ट प्रतिपादित होती है। क्योंकि ब्रह्म चराचरात्मक प्रपञ्च का कारण है।

कारणवत्व होने ब्रह्मा को जडत्व ब्रह्मा का नहीं विचारना चाहिए। इसलिए कहा गया है ब्रह्मज्ञानस्वरूप होता है। यहाँ पर ज्ञान पद भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्य करने पर निष्पन्न समझना चाहिए। न की नैयायिकों के अभिमत में ज्ञानकर्तृत्व यहाँ पर प्रतिपादित किया गया है। कर्तृत्व भी विकार ही है। ब्रह्म में विकारों को स्वीकार करने पर उसका सत्यत्व सम्भव नहीं होता है। ब्रह्मा का ज्ञानकर्तृत्व अङ्गीकार करने पर ज्ञेय ज्ञान से उसके भेद के कारण उसकी परिछिन्न अनन्तता सम्भव नहीं होती है। जैसे सूर्य का प्रकाश, अग्नि की उष्णता वैसे ज्ञान ब्रह्म का स्वरूप होता है। वह ज्ञान कारणान्तरनिरपेक्ष होने से नित्य तथा काल आकाशादि का कारण होने से सूक्ष्म होता है।

ज्ञान स्वरूप ब्रह्म की लौकिक ज्ञान के समान अन्तवत्व कल्पना नहीं करना चाहिए। इसलिए कहा गया है अनन्तं ब्रह्म। ब्रह्म की देश काल तथा वस्तु के अन्त के अभाव के कारण अनन्तता सिद्ध होती है। ब्रह्म ही अखिल जगत् का कारण है। कार्य व्याप्य होकर के कारण में रुकता है। इसलिए जगत् व्याप्य ब्रह्मा के विद्यमानत्व से उसका सर्वव्यापित्व सिद्ध होता है। तीनों कालों में ब्रह्म का असत्व कभी भी सिद्ध नहीं होता है इस प्रकार उससे काल से अन्तत: सिद्ध नहीं होती है। ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ के अभाव से सभी वस्तुओं में अनुस्यूतत्व से ब्रह्म का वस्तुत: परिच्छेद भी सम्भव नहीं होता है। इसलिए सर्वविधान्ताव्यावर्तक अनन्तपद ब्रह्म का लक्षण होता है।

ब्रह्म विज्ञानमय तथा आनन्दमय होता है इसलिए आनन्दमय ब्रह्म को जानना चाहिए आनन्दमय ब्रह्म को जानना चाहिए। जो ब्रह्म है वह सुख स्वरूप है इस प्रकार से श्रुतियों में ब्रह्म आनन्दस्वरूप में ख्यापित है। तथा साधनपरन्त्रताभाव से एवं अविनाशित्व भाव से इस आनन्द की परमता समझनी चाहिए। यहाँ पर आनन्द का अर्थ केवल दु:ख का अभाव ही नहीं समझना चाहिए अपितु श्रुतिप्रतिपद्यार्थ के दुर्निरुप्यत्व से ब्रह्मस्वरूप आनन्दमात्र लौकिक आनन्द ही होता है। अभाव का आधिक्य तथा न्यून रूप के चिन्तन का विधान विधान विद्वानों के द्वारा नहीं किया गया है। इसलिए दु:ख का अभाव ही मोक्ष है यहाँ पर सांख्य तथा नैयायिक सिद्धान्त दूषित ही है। अब कहते हैं कि आनन्द शब्द पुल्लिङ्ग का है जिसका मत्वर्थीय अच् प्रत्यय करने पर आनन्द पद का आनन्दविशिष्ट अर्थ होता है नहीं तो पुल्लिङ्ग में विद्यमान आनन्दशब्द का ब्रह्म की विशेषणता के कारण किस प्रकार व्यवहार होता। तब कहते कि ऐसा नहीं है आनन्दोब्रह्मेति व्यजानात् इस प्रकार के श्रुतिवाक्यों मे ब्रह्मसमानाधिकरण्य के कारण आनन्दपद के श्रवण से वह विशेषण बन जाता है। इसलिए आनन्द तथा ब्रह्म इत्यादि स्थलों में ब्रहस्वरूप ही आनन्द पद की व्याख्या है अन्यथा श्रुतियों में परस्पर विरोध आ जाएगा।

सत्य ज्ञान तथा अनन्त पद ब्रह्म के लक्षण हैं। लक्षण लक्ष्य के इतर व्यावर्तक होते हैं। इसलिए सत्य पद ब्रह्म का अनृतविकारों से व्यावर्तक होता है। ज्ञानपद जड़ ब्रह्म का व्यावर्तक होता है। तथा अनन्तपद विशिष्ट वस्तुओं से ब्रह्म का व्यावर्तक होता है। इस प्रकार तो सत्यादि पदों का अनृतादि

ध्यान दें:

धर्मनिवृतिपरत्व से ब्रह्म के अप्रसिद्धत्व से सत्यादिवाक्यों की शून्यार्थता होती है। तो कहते हैं नहीं। सत्यादियों का विशेषणत्व सत्य होने पर भी लक्षणार्थत्व से लक्षण का लक्ष्य सत्व होने के कारण ही प्रयोज्यमानत्व से शून्यार्थापत्ति होती है। सत्यादि पदों के विशेषणत्व होने पर भी सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि वाक्यों कि तथा विशेषणों के विशेष्यनियन्तृत्व से शून्यार्थता नहीं है। तथा असत विशेष्य में विशेषणोपदान के असम्भवत्व से भी। अब कहते हैं कि निश्चितरूप से सत्यज्ञानानन्त पदों के ब्रह्मप्रतिपादकत्व से उनके पर्यायवाचकत्व की आपत्ति होती है। तो सत्यपद के द्वारा ब्रह्म के निर्देश करने से ज्ञान अनन्त आदि पदों के उपादान में पुनरुक्ति हो जाएगी। यहाँ पर कहते है कि सत्यादि पदो के द्वार भले ही ब्रह्म का बोध होता है। फिर भी उनकी शक्यता अवच्छेदक के व्यावर्त्य के भेद से उनकी पर्यायतापत्ति नहीं होती है। ब्रह्म की गुणक्रियाजाति आदि के रहित होने से शब्दवाच्यता सम्भव नहीं होती है। इसलिए सत्यादि शब्दों के द्वारा ब्रह्म को नहीं समझा जा सकता है। अपितु सत्यादि पदों के द्वारा ब्रह्म लक्षित होता है। इसलिए आचार्य भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने कहा है- सत्यादिशब्द इतरेतरसन्निधानादन्योऽन्यनियम्यनियामकाः सन्तः सत्यादिशब्दवाच्यान्निवर्तका ब्रह्मणो लक्षणार्थाश्च भवन्तीति। तेन च न यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह, अनिरुक्तेऽनिलयने इत्यादिश्रुतिविरोधः।

लक्ष्य में विद्यमान असाधारण धर्म को लक्षण कहते है। धर्म धर्मी में रुकता है। सत्यत्व आदि के ब्रह्मस्वरूपत्व होने से ब्रह्मधर्मत्व का अभाव होता है। इसलिए सत्यत्व आदि ब्रह्म के लक्षण नहीं होते हैं तब कहते है कि स्वयं की स्वयं मे अपेक्षा के कारण तथा धर्मधर्मी भाव कल्पना के कारण लक्ष्यलक्षत्व के सम्भव होने से ऐसा नहीं होता है। सत्यादि ब्रह्मस्वरूपत्व से भलेही ब्रह्म से भिन्न है फिर भी कल्पित धर्मधर्मीभाव के कारण वहाँ पर सत्यादि का ब्रह्मवृतित्व साधना चाहिए। पञ्चपदिकाकार कहते हैं कि- आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति सन्ति धर्माः,अपृथक्त्वेऽपि चौतन्यात् पृथगिवावभासन्ते इति। (आनन्द विषयों का अनुभव तथा नित्यत्व ये धर्म होते हैं, ये अपृथकत्व होने पर भी चैतन्य से पृथक् के समान ही भासित होते हैं)।

इस प्रकार से ब्रह्म निरवयव अखण्ड स्वगत सजातीय तथा विजातीय भेद रहित होता है। इसलिए ब्रह्म के विषय में छान्दोग्योपनिषद् में कहा है एकमेवाद्वतीयम् इति अर्थात् वह अद्वितीय होता हुआ एक ही है। यहाँ पर एक पद से ब्रह्म में सजातीय भेदनिरास होता है। तथा एव पद से स्वगत भेद निरास होता है। अद्वितीय इस पद से विजातीय भेद निरास विहित है। स्वगत सजातीय तथा विजातीय भेदों के स्वरूप के विषय में कहा गया है पञ्चदशी में

वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादिभिः।
वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीयः शिलादितः॥

(पञ्चदशी 2.20) इति।

अर्थात् वृक्ष के पत्रपुष्पफलादि के द्वारा अपने अवयवों से भेद स्वगत भेद होते हैं, वृक्ष का दूसरे वृक्ष से भेद सजातीय भेद होता है वृक्ष का पत्थरादि से भेद विजातीय भेद होता है। ब्रह्म में ये तीनों भेद नहीं होते है। ब्रह्म के निरवयत्व होने से उसमें स्वगत भेद नहीं होता है। ब्रह्मव्यतिरिक्त द्वितीय के अभाव के कारण ब्रह्म में सजातीय तथा विजातीय दोनों भेद नहीं होते हैं।

पाठगत प्रश्न 11.2

1. ब्रह्म के स्वरूप लक्षणों का प्रतिपादन करने वाले श्रुति वाक्य कौन-कौन से हैं?
2. लक्षण तथा विशेषण में क्या भेद होता है?

ध्यान दें:

3. पार्ष्ठिकान्वय क्या होता है तथा उसका उदाहरण बताइये?

4. सत्य पद का क्या अर्थ है?

5. ब्रह्मलक्षणभूतज्ञान पद का क्या अर्थ है?

6. आनन्दपद के दु:ख का अभाव वाला अर्थ कहाँ से लिया गया है?

7. सत्यपद ब्रह्म में कैसे व्यावर्तक होता है?

8. ज्ञानपद ब्रह्म में कैसे व्यावर्तक होता है?

9. ब्रह्म की शब्दवाच्यता कैसे सम्भव नहीं होती है?

10. सत्यत्वादि के ब्रह्मस्वरूपत्व से ब्रह्म की लक्षणता कैसे सिद्ध नहीं होती है?

11. सत्यत्वादि के ब्रह्मस्वरूपत्व होने पर भी लक्षणपरता को प्रतिपादित करने के लिए पञ्चपदीकाकार ने क्या कहा है?

12. सजातीय भेद किसे कहते हैं?

13. स्वगत भेद किसे कहते हैं?

14. ब्रह्म में सजातीय तथा विजातीय भेद किस प्रकार से नहीं होते हैं?

15. ब्रह्म में स्वगत भेद किसलिए नहीं होते हैं।

ब्रह्म का तटस्थ लक्षण

ब्रह्म का तटस्थलक्षण तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में कहा गया है। जिससे ये भूत उत्पन्न होते है। तथा जिससे ये जीवित रहते हैं, जो प्रलय में भी रहता है तथा जो जिज्ञासा का विषय है वह ब्रह्म कहलाता है। वहाँ पर निर्णय वाक्यत्व के द्वारा कहा गया है कि आनन्द स्वरूप से ही ये भूत उत्पन्न होते है। तथा आनन्द से ही उत्पन्न हुए जीवित रहते हैं, इस श्रुति को आधार करके ही भगवान बादरायण ने ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का सूत्र बनाया है 'जन्माद्यस्य यत:'। इस सूत्र के भाष्य में शङ्कराचार्य भगवत्पाद नें कहा है की इस जगत् के जन्म स्थिति तथा प्रलय जिस सर्वज्ञ की शक्ति के कारण होते हैं वह ब्रह्म कहलाता है। इन सभी को लेकर वेदान्त परिभाषा में ब्रह्म का तटस्थलक्षण कहा गया हैं जगज्जन्मादिकारणत्वम्। जगत् पद से यहाँ पर कार्य सूचित होता है। जन्मादि के द्वारा तथा आदि पद के द्वार यहाँ पर स्थिति तथा लय का ग्रहण होता है। और कारणत्व यहाँ पर कर्तृत्व रूप होता है उससे अविद्यमान में अतिव्याप्ति नहीं होती है । अविद्या का कर्तृत्व अभाव से जगत् कारणत्व भी होता है। इसलिए ब्रह्म का तटस्थलक्षण जगज्जन्मस्थितिलय तथा कर्तृत्व किया गया है।

कौमुदीकार रामाद्वयाचार्यों के मत में जगज्जन्मस्थितिलयों में एक के एक कारणत्व होने पर भी ब्रह्म का लक्षण हो सकता है। इसलिए चराचरग्रहण से इस सूत्र में जगत् लय तथा कारणत्व ही ब्रह्मलक्षणत्व के द्वारा कहा गया है। इस प्रकार से जगज्जन्मकर्तृत्व, जगत्स्थितिकर्तृत्व, जगल्लयकर्तृत्व ये तीन लक्षण ब्रह्म के सम्भव होते हैं। तथा वेदान्त परिभाषा में कर्तृत्व 'तत्तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्व' कहा गया है। उसको देखने वाला जो सर्वज्ञ होता है तथा सभी विद्याओं और ज्ञान को जानने वाला होता है, य: सर्वज्ञ: सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप: इस प्रकार की श्रुतियों के द्वारा ब्रह्म का उपादानगोचर तथा अपरोक्ष ज्ञान का प्रतिपादन किया जाता है, सोऽकामयत इत्यादि श्रुतियों के द्वारा उपादान विषयक चिकीर्षा ब्रह्म की जानी जाती है। तदात्मानं स्वयमकुरुत तन्मनोऽकुरुत, इत्यादि श्रुतियों के द्वारा ब्रह्म के उपादान विषयक

ध्यान दें:

कृतिमत्व का ज्ञान होता है। इन ज्ञान चिकीर्षाकृतियों का पूर्वोक्त तीनों लक्षणों में अलग अलग संयोजन करने पर ब्रह्म के नौ लक्षण होते हैं वे हैं

जगज्जन्मानुकूलापरोक्षज्ञानवत्त्वम्, जगज्जन्मानुकूलचिकीर्षामत्त्वम्, जगज्जन्मानुकूलकृतिमत्त्वम्, जगत्स्थित्यनुकूलापरोक्षज्ञानवत्त्वम्, जगत्स्थित्यनुकूलचिकीर्षावत्त्वम्, जगत्स्थित्यनुकूलकृतिमत्त्वम्, जगल्लयानुकूलापरोक्षज्ञानवत्त्वम्, जगल्लयानुकूलचिकीर्षावत्त्वम्, जगत्स्थित्यनुकूलकृतिमत्त्वम

कार्य के अनुकूल ज्ञानवत्व कर्तृत्व कहलाता है। इस मत में ब्रह्म के तीन तटस्थ लक्षण होते हैं जगज्जन्मानुकूलापरोक्षज्ञानवत्त्वम्, जगज्जन्मानुकूलचिकीर्षामत्त्वम्, और जगज्जन्मानुकूलकृतिमत्त्वम्।

ब्रह्म का अपर तटस्थलक्षण निखिलजगदुपानत्व होता है। यहाँ पर उपादानत्व से तात्पर्य जगदध्यासाधिष्ठानत्व तथा जगदाकार के द्वारा विपरिणममानमायाधिष्ठान्त है। इसलिए जगत् के अध्यास में जो अधिष्ठान है वह ब्रह्म कहलाता है। उस प्रकार का अधिष्ठानत्व ब्रह्म में होता है। जगद्रूपेण विपरिणममानायाः परिणाम्युपादानकारणभूताया मायायाः अधिष्ठानं ब्रह्म, तादृशमायाधिष्ठानत्वं च ब्रह्मणि, इस प्रकार का लक्षण समन्वय होता है। तब कहते हैं कि यदि जगत् जड़ है तो उसका कार्य भी सजातीय जड ही होना चाहिए। तो कहते हैं कि यह नियम परिणाम उपादान कारण के विषय में है। यह जगत् ब्रह्म का विवर्तभूत है विवर्त उपादानकारण के सजातीयत्व में नियम नहीं होता है। जगत् के उपादानत्व से ही ब्रह्मा के साथ जगत का तादात्म्य ख्यापित होता है इसलिए श्रुतियों में कहा गया है इदं सर्वं यदयमात्मा, सच्च त्यच्चाभवत्, बहु स्यां प्रजायेय अर्थात् यह (ब्रह्म) ही सभी की आत्मा यह ही सत्य है तथा समस्तप्रजाओं के रूप में यह विस्तृत है।

ब्रह्म इस जगत् का निमित्तकारण तथा उपादान कारण भी होता है। अब कहते हैं कि ब्रह्म जगत का निमित्त कारण मात्र होने योग्य नहीं है। वह सृष्टि करके उसमें प्रवेश करता है इसलिय श्रुतियों में सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि में ब्रह्म की सर्वकार्य व्यापकता ज्ञान होती है। न की निमित्त कारण ज्ञान होता है। इसलिए ब्रह्म जगत् का उपादान कारण होने योग्य भी नहीं है, क्योंकि जगत् तो जड़् है अतः उपादान में भी जडत्व आ जाएगा। यहाँ पर कहते है कि ब्रह्म चैतन्य के बिना जगत् की उत्पत्ति असम्भव होने से ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण भी है। जगत् उपादानमायाधिनिष्ठानत्व से उस ब्रह्म का उपादानत्व भी सिद्ध होता है। इसलिए कहा जाता है कि माया जगत् का परिणामी उपादान कारण है, तथा मायधिष्ठान ब्रह्मजगत् का परिणामि उपादान कारण है। लेकिन यहाँ पर तो निमित्त कारण उपादान कारण से अलग हो रहा है। इसलिए किस प्रकार से एक ब्रह्मा के ही एकसाथ निमित्तकारण तथा उपादान कारण हो सकते हैं। तब कहते हैं कि ब्रह्मस्वप्रधानता के कारण निमित्त तथा अज्ञानरूप उपाधि की प्रधानता के कारण उपादान होता है। जिस प्रकार से मकड़ी अपने जाले के निर्माण में स्वयं की प्रधानता के कारण निमित्त कारण तथा अपने शरीर की प्रधानता के कारण उपादान कारण होती है उसी प्रकार ब्रह्म भी है। इसलिए शास्त्रों में कहा भी गया है।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि।
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥ इति।

ब्रह्मलक्षण के प्रतिपादन काल में जगत् जन्म स्थिति हेतुत्व से ब्रह्म के निमित्तकारणता जगत् लय आधिष्ठानत्व से उसकी उपादानकारणता ज्ञात होती है। इसके द्वारा जन्माद्यस्य यतः इस सूत्र से निखिलजगद् अभिन्न निमित्त उपादानकारण ब्रह्म प्रतिपादित होता है। सिद्धान्तलेशसंग्रह में कुछ लोगों के मत में यह लिखा गया हैं कि "अन्य स्थानों पर तो जन्मकारणत्व का स्थितिकारणत्व का निमित्तकारणसाधारण्य

ध्यान दें:

से उपादानत्वप्रत्यय के लिए ब्रह्म में लय दर्शित होता है। फिर भी ब्रह्म जगत् का उपादान है, जन्म होने के कारण जिस प्रकार घट का जन्म होता है, तथा कुलाल के समान तथा उपादान होने के कारण निमित्त अन्यत्र स्थित होना चाहिए इस शङ्का के निवारण के लिए कहते हैं की उसमें ही- जगत् जनन जीव नियामकत्व कहा गया है। तथा एक यह भी लक्षण दिया जाता है। तथा एक यह भी लक्षण है अभिन्ननिमित्तोपादानतयाद्वितीयं ब्रह्मोपलक्षयतीत्याहु:" (ब्रह्म के निमित तथा उपादान अभिन्न होने से वह एक ही है)। 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' इस प्रकार से ब्रह्मसूत्र में भी ब्रह्म ही जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण कहा गया है। तथा इस प्रकार से साक्षात् प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्म प्रकृति: उपादानं च भवति। यहाँ पर च इस पद से निमित्तकारणता का भी आक्षेप होता है। यहाँ पर यह हेतु होता है कि- जिसके जानने से सभी का ज्ञान हो जाए इस प्रकार की कोई प्रतिज्ञा करता है, जैसे सौम्य मिट्टी के पिण्ड से सभी मिट्टी के पिण्डों के बारे में जानने लगता है इस प्रकार का दृष्टान्त है। किं बहुना, यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, इस श्रुति वाक्य में यत: इस पद में सुनाई देने वाली पञ्चमी विभक्ति, जनिकर्तु: प्रकृति: इस सूत्र के द्वारा अपादानसंज्ञा के विधान से होती है। इसके द्वारा भी ब्रह्म का जगत् उपादानत्व स्फुट होता है। इस प्रकार से यह स्पष्ट होता हैं कि ब्रह्म ही जगत् का निमित्त कारण तथा उपादान कारण है।

पाठगत प्रश्न 11.3

1. ब्रह्म के तटस्थलक्षण का प्रतिपादन करने वाले श्रुतिवाक्य कौन-कौन हैं?
2. ब्रह्म के तटस्थलक्षण का प्रतिपादक सूत्र कौन-सा है?
3. वेदान्त परिभाषा में ब्रह्म का क्या तटस्थलक्षण प्रतिपादित किया है?
4. जगज्जन्मादिकारणत्व यहाँ पर कारणत्व पद का कर्तृत्वरूप अर्थ के अङ्गीकार करने पर कहाँ पर अतिव्याप्ति नहीं होती है?
5. ब्रह्मलक्षण के विषय में कौमुदी कारों का क्या मत है?
6. कर्तृत्व किसे कहते हैं।
7. ब्रह्म का जगत् जन्म स्थिति लय तथा कारणत्व को छोड़कर दूसरा लक्षण क्या है?
8. निखिलजगत् उपादानत्व यहाँ पर उपादानत्व किसे कहते है?
9. ब्रह्म जगत् का उपादान कैसे है?
10. ब्रह्म किस प्रकार से जगत् का उपादान कारण तथा निमित्त कारण होता है?

11.1) सगुण और निर्गुण ब्रह्म

ब्रह्म स्वभाव से निर्गुण होता है तथा निर्गुण के बोध में असमर्थ मुमुक्षुओं के लिए सगुणत्व के द्वारा ब्रह्म का उपदेश दिया जाता है। इसलिए शङ्कराचार्य ने आनन्दमयाधिकरण भाष्य के आरम्भ में कहा है की दो रूपों से ब्रह्म समझा जाता है सर्वप्रथम नामरूपविकारभेदोपाधिविशिष्ट तथा दूसरा सभी प्रकार की उपाधियों से विवर्जति। सोपाधिकब्रह्म उपासना के द्वारा तथा निरूपाधिकब्रह्म ज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है, इस प्रकार से वेदान्त में उपदेश किया गया है।

ध्यान दें:

11.1.1) निर्गुण ब्रह्म

अद्वैतवेदान्त के मत में ब्रह्म स्वरूप से निर्गुण ही होता है। ब्रह्म में गुण स्वीकार करने पर वह ब्रह्म क्या वह ब्रह्म के गुण सत्य है अथवा मिथ्या इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होता है। यदि गुण सत्य है तो ब्रह्म के अतिरिक्त गुणों के सत्य होने से अद्वैतभङ्ग प्रसङ्ग होता है। तथा ब्रह्म में स्वीक्रियमाण गुणों के मिथ्या होने से इष्टापत्ति होती है। इसलिए ब्रह्म स्वरूप से निर्गुण ही युक्त है। जो सगुणादि रामानुजादि हैं वे भी निर्गुणब्रह्म को हमेशा अङ्गीकार करते हैं। जिस प्रकार से यह कहा जाए कि दण्ड से युक्त पुरुष है। यहाँ पर दण्डविशिष्टपुरुष के बोधस्थल में विशेष्य पुरुष का विशेषण दण्ड का पृथक् पृथक् ज्ञान अपेक्षित है। उसी प्रकार गुणविशिष्ट ब्रह्म के बोध के लिए गुणरहित ब्रह्म का ज्ञान भी अपेक्षित होता है। सगुणत्ववादि तथा निर्गुणब्रह्मविषयक श्रुतियाँ प्राकृतगुणरहित ब्रह्म का प्रतिपादन करती है। इस प्रकार से कहा जाता है।

इस प्रकार से ब्रह्म के जाति रहित होने पर भी एक की जाति अङ्गीकार नहीं की जा सकती है। ब्रह्म में सर्वव्यापित्व तथा निरवयवत्व होने के कारण क्रिया भी नहीं है। ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरे के अभाव के कारण ब्रह्म में कोई सम्बन्ध भी नहीं है। इस प्रकार से गुण क्रिया जाति संबंध रहित होने से ब्रह्म को किसी भी प्रकार की वाणी से प्रतिपादित नहीं किया जा सकता है। इसलिए ब्रह्म वाणी आदि इन्द्रियों का विषय नहीं है। इस प्रकार श्रुतियाँ प्रतिपादित करती है। उपनिषदों में कहा भी है यद्वाचानभ्युदितम् (केन. 1.4) यतो वाचो निवर्तन्ते (तै. 4.4) इत्यादि।

ब्रह्म की निर्गुणता हजारों श्रुतियों में प्रतिपादित की गई है। जैसे की ईशोपनिषद् में कहा गया है - तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके इति, (वह कम्पित होता है वह बढ़ता है, वह दूर भी है तथा पास भी है) केनोपनिषद् में कहा है कि न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः (जहाँ पर नेत्र वाणी तथा मन नहीं जाता है वह ब्रह्म है)। कठोपनिषद् में कहा गया है कि अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् इति (जो शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित,रस रहित गन्ध रहित है वह ब्रह्म है) प्रश्नोपनिषद् में कहा गया हैं कि - तदच्छायमशरीरम् अलोहितं शुभ्रमक्षरम् (उसकी छाया तथा शरीर नहीं और वह अलोहित तथा शुभ्र अक्षर है), मुण्डकोपनिषद् में कहा गया हैं कि - अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः (वह प्रापण रहित तथा मन रहित होता हुआ शुभ्र होता है) और माण्डुक्योपनिषद् में कहा गया है - अदृष्टम् अव्यवहार्यम् अग्राह्यम् अलक्षणम् अचिन्त्यम् अव्यपदेश्यम् (वह नहीं दिखाई देने वाला, अग्राह्य लक्षणहीन तथा चिन्तनरहित तथा वर्णन रहित है) इति छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है - अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः इति (वह शरीर रहित है तथा उसका कोई प्रिय तथा अप्रिय नहीं है), बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि तदतद्ब्रह्म अपूर्वम् अनपरम् अनन्तरम् अबाह्यम् (वह यह ब्रह्म अपूर्व अंतर तथा अबाह्य है) इत्यादि। इस प्रकार से ब्रह्म की निर्गुणता तथा सगुणता का श्रुतिप्रतिपादिकत्व से उसका निराकरण कैसे भी नहीं कर सकते हैं। ब्रह्म का सुगणपत्व समुन्नयन तो श्रुत्यर्थपरत्याग करने पर ही सम्भव होता है।

11.1.2) सगुण ब्रह्म

निर्गुण ब्रह्म के ध्यान में असमर्थो के लिए ब्रह्म में कल्पितगुणों का संयोजित करके ब्रह्म के सगुणत्व का श्रुतियाँ प्रतिपादन करती है। इसलिए कहा भी गया है कि साधकों के हित के लिए ब्रह्म के रूप की कल्पना की गई है। सगुणब्रह्म के प्रतिपादन के प्रसङ्ग में ही ब्रह्म के जगत्कर्तृत्वादि गुणयोगों वर्णन किया गया है। कर्तृत्व होने से उसमें जगत् उपादान विषयक परोक्षज्ञान चिकीर्षा (करने की इच्छा) कृति आदि की कल्पना की गई है। निर्गुणकारणव्यतिरिक्त अद्वैत ब्रह्म जगत् का कारण न ही हो सकता है। इसलिए माया रूपी उपाधि के साथा उसके सम्बन्ध की कल्पना करके ब्रह्म का ईश्वरत्व तथा

पाठ-11

ब्रह्म

ध्यान दें:

जगत्सर्जत्व श्रुतियों में प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार से अखिलजगद् उपादानत्व से ब्रह्म के सर्वज्ञत्व तथा सर्वव्यापित्व का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण जगत का उपादान होने कारण उसका जगत् के अन्दर प्रविष्टत्व तथा सर्वव्यापित्व भी सिद्ध होता है। वाणीमन तथा प्राणादि से सम्बन्ध होने के कारण उसका वाङ्मयत्व प्राणमयत्व तथा मनोमयत्व श्रुतियों में प्रतिपादित किया गया है। लेकिन कल्पितगणों के योग के कारण ही ब्रह्म सगुणत्व इस प्रकार से जाना जाता है, स्वरूपतः ब्रह्म निर्गुण तथा निर्विशेष होता है कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः, अणोरणीयान् महतो महीयान् (कठ. 1.2.20), अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद (प्रश्न. 6.6), यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि (मु. 2.2. 7), एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् (मा. 6), सोऽकामयत, बहु स्यां प्रजायेयेति (तै. 2.6) इति यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते (तै. 3.1) इति, सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः (छा. 3.14.4), अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः (बृ. 1.5.3), मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् (श्वे. 4.10) इत्यादि हजारों श्रुतियों में ब्रह्म का सगुणत्व का भी आलोचन है।

श्रुतियों में ब्रह्म का उपदेश दो प्रकार से विधान किया गया है विधिमुख के द्वारा और निषेध मुख के द्वारा। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म,विज्ञानमानन्दं ब्रह्म इत्यादि श्रुतियों में विधिमुख के द्वारा ब्रह्म का उपदेश है। इसी प्रकार नेह नानास्ति किञ्चित किञ्चन, अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्, अदृष्टम् अव्यवहार्यम् अग्राह्यम् इत्यादि श्रुतियों में निषेधमुख से ब्रह्म का उपदेश विहित है। वस्तुतः निषेध मुख से ब्रह्म का निर्देश ब्रह्म के गुणक्रियाजातिसम्बन्धरहितत्व उसका वाच्यत्व असम्भव होने से अधिक युक्त लगता है। इसलिए सत्यज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादिस्थलों में सत्यादि पदों के निषेध मुख से तात्पर्य समझना चाहिए इस प्रकार से वेदान्ति कहते हैं। इसप्रकार से ब्रह्म का सत्य अर्थात् अनित्यभाव, ज्ञान अर्थात् जड् का अभाव और अनन्त अर्थात् अन्त का अभाव समझना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 11.4

1. ब्रह्म स्वरूप से सगुण है अथवा निर्गुण?
2. सगुणत्ववादि तथा निर्गुणत्ववादि श्रुतियाँ ब्रह्म के किस अर्थ की कल्पना करती है?
3. ब्रह्म में क्रिया किस प्रकार अङ्गीकार नहीं की जाती है?
4. जगत्कर्तृरूप से प्रतिपाद्यमान ब्रह्म सगुण है अथवा निर्गुण?
5. ब्रह्म का सर्वान्तर्यामित्व किस प्रकार से है?
6. सगुण तथा निर्गुण इन दोनों में से कौन-सा ब्रह्म जानना चाहिए?
7. निषेध मुख से ब्रह्म का निर्देश किन श्रुतियों में बताया गया है?

पाठ सार

इस पाठ में ब्रह्म के लक्षण का आलोचन किया गया है तथा सगुण एवं निर्गुण भेद से ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है बृहि वृद्धौ इस वृद्ध्यर्थक बृहधातु से 'बृंहेर्नोऽच्च' इस सूत्र के द्वारा कर्ता अर्थ में मनिन् प्रत्यय करने पर ब्रह्म शब्द निष्पादित होता है। अर्थात् जो बढ़ता है वह ब्रह्म कहलाता है। इससे ब्रह्म का सर्वव्यापकत्व ज्ञान होता है जो प्रजा को बढ़ाता है वह ब्रह्म है तथा जो हर चैतन्य के अन्दर आत्मा के रूप में विद्यमान होता है वह ब्रह्म कहलाता है।

पाठ-11

ब्रह्म

ध्यान दें:

लक्षण ही लक्ष्य मात्र में विद्यमान असाधारण धर्म होता है। वह लक्षण स्वरूपलक्षण तथा तटस्थलक्षण के रूप में दो प्रकार का होता है। जो वस्तु के स्वरूप में होता हुआ अन्यवस्तु से उस वस्तु में व्यार्तक होता है वह स्वरूप लक्षण कहलाता है। जैसे मधुरत्व शक्कर का स्वरूपलक्षण होता है जितने समय तक लक्ष्य रुकता है उतने समय तक लक्ष्य में अविद्यमान होता हुआ भी वह धर्म लक्ष्य होता है तथा उससे भिन्न से व्यावर्तक होता है इस प्रकार से यह तटस्थ लक्षण कहा जाता है। जैसे गन्धवत्व पृथ्वी का तटस्थलक्षण है। क्योंकि उत्पन्न उत्पत्ति के प्रथम क्षण में पृथ्वी में गन्ध नहीं थी फिर भी गन्ध का पृथ्वी अन्यस्थानों से व्यावर्तन कर लेती है उसी प्रकार ब्रह्म के भी स्वरूपलक्षण तथा तटस्थलक्षण श्रुतियों में प्रतिपादित किये है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म इत्यादि श्रुतियों में सत्य ज्ञान तथा आनन्द तथा अनन्तपद के द्वारा ब्रह्म का स्वरूपलक्षण कहा गया है। भले ही सत्यज्ञान आनन्द आदि ब्रह्म के स्वरूप ही है फिर भी कल्पितधर्मधर्मि भाव के द्वारा उनका लक्षणत्व सम्भव होता है। सत्य पद से स्वस्वरूपव्यभिचारिरूपार्थ, ज्ञान पद से भावप्रत्ययसिद्धि तथा नित्यज्ञानरूपार्थ और आनन्दपद से निरतिशयानन्दस्वरूपरूपार्थ अनन्तपद से सर्वव्यापकत्व रूप अर्थ अङ्गीकार किया गया है। वह ब्रह्म सजातीय तथा स्वगत विजातीय भेद रहित श्रुतियों मे प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्म का तटस्थलक्षण ही जगत् अभिन्न निमित्त उपादान कारणत्व के रूप में तथा जन्माद्यधिकरण के रूप में प्रतिपादित किया गया है। तब आधार करके जगत की उत्पत्ति स्थिति लय कर्तृत्व युक्त इस प्रकार का ब्रह्म का लक्षण वेदान्तपरिभाषा में आलोचित किया गया है। कर्तृत्व अर्थात् वह उपादानगोचर अपरोक्षज्ञान चिकीर्षा कृत्तिमत्व के रूप वाला होता है। इसलिए उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय के एक-एक ज्ञान की चिकीर्षा और कृति ब्रह्म में होती है। इस प्रकार से ब्रह्म के नौ तटस्थलक्षण सम्भव होते हैं निखिलजगदध्यासाधिष्ठानत्वं जगदाकारेण परिणममानमायाधिष्ठानत्वं वा ब्रह्म का अपर तटस्थलक्षण है। ब्रह्म स्वभाव से निर्गुण होता हुआ भी निर्गुणब्रह्म के ज्ञान के लिए असमर्थ मुमुक्षुओं के लिए सगुण ब्रह्म का ही उपदेश दिया गया है। सगुण ब्रह्म ही उपासना के द्वारा जाना जाता है तथा निर्गुण ब्रह्म ज्ञान के द्वारा जाना जाता है। गुणक्रियाजातिसम्बन्धरहित होने के कारण ब्रह्म का वाणी के द्वारा प्रतिपादन नहीं किया जाता है। जगत्कर्तृत्वादिकल्पितगुणयोगसे सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन सम्भव होता है। सगुण ब्रह्म ही ईश्वर तथा जगत् का कर्ता है। जो सर्वज्ञ है तथा सभी का ज्ञाता वह सगुण ब्रह्म है इस प्रकार से श्रुतियों में सगुण ब्रह्म का उपदेश दिया गया है।

श्रुतियों में विधिमुख से तथा निषेधमुख से ब्रह्म का उपदेश दिया गया है। सत्यज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि श्रुतियों में विधिमुख से ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है। नेह नानास्ति किञ्चन, अशब्दमस्पर्शनम् इत्यादि श्रुतियों में निषेध मुख से ब्रह्म का उपदेश विहित है। इन दोनों के बीच में निषेध मुख के द्वारा ही ब्रह्म का प्रतिपादन युक्ति पूर्वक है इसलिए विधिमुख से ब्रह्म के प्रतिपादनकाल में भी सत्यपद का अनित्य अभाव होता है तथा ज्ञान पद का जड़ अभाव होता है। इस प्रकार से निषेध मुख से अर्थ की कल्पना की गई है।

आपने क्या सीखा

- ब्रह्म पद के अर्थ को जाना,
- लक्षणों के प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करो
- ब्रह्म के स्वरूप तथा लक्षण को जाना,
- ब्रह्म के लक्षण तथा स्वरूप को जाना,

ध्यान दें:

- निगुण ब्रह्म के स्वरूप को जाना,
- सगुण ब्रह्म के स्वरूप को जाना,

पाठान्त प्रश्न

1. वाचस्तपि मिश्र के द्वारा ब्रह्म पद का कौन-सा अर्थ किया है?
2. वस्तुओं का परिच्छेद कैसे सम्भव होता है?
3. आत्मपद के विषय में सुरेश्वराचार्य ने क्या कहा है?
4. नैयायिकों के मत में उत्पत्ति काल में पृथ्वी में गन्ध किस प्रकार से नहीं थी?
5. किस श्रुति में ब्रह्म की उपनिषद् मात्र से वेद्यता कही गयी है?
6. अनन्तपद ब्रह्म का किस प्रकार से व्यावर्तक होता है?
7. स्वगतादिभेदत्रय स्वरूप का प्रतिपादक पञ्चदशी का श्लोक कौन'सा है?
8. ब्रह्म किस प्रकार से जगत् का उपादान कारण है?
9. श्रुतियों में ब्रह्म का दो प्रकार से उपदेश किया गया है वे दो प्रकार कौन-कौन से हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 11.1

1. वृद्ध्यर्थकाद् बृहधातोः 'बृंहेर्नोऽच्च' इति सूत्रेण कर्तरि मनिन्-प्रत्यये ब्रह्मशब्दो निष्पद्यते।
2. निरतिशय तथा वृद्धिमान् ब्रह्म होता है अथवा जो प्रजा को बढाता है वह ब्रह्म होता है।
3. सातत्य गमनार्थक धातु से सातिभ्यां मनिन्मनिणौ इति सूत्र से कर्तरि मनिन्-प्रत्यये आत्मन् करने पर ब्रह्म शब्द निष्पादित होता है।
4. जो निरन्तर भाव से चलता रहता है तथा जाग्रत आदि सभी अवस्थाओं में वह आत्मा कहलाता है। आप धातु से आ पूर्वक धा धातु से तथा अद् धातु से आत्मशब्द की निष्पत्ति होती है जो सब कुछ प्राप्त करता है अथवा सब ग्रहण करता तथा सब भक्षण करता है वह आत्म कहलाता है। इस प्रकार से आत्म के ये अर्थ सम्भव होते हैं।
5. स्वरूपत्व होने पर जिसमें व्यावर्तकत्व होता है वह स्वरूप का लक्षण होता है। इसलिए धर्मराजाध्वरीन्द्र ने कहा है कि स्वरूप ही स्वरूप का लक्षण होता है।
6. यावल्लक्ष्यकालम् अनवस्थितत्वे सति व्यावर्तकत्वं तटस्थलक्षणस्य लक्षणम्। जितने समय तक लक्ष्य रुकता है उतने समय तक लक्ष्य में अविद्यमान होता हुआ भी वह धर्म लक्ष्य होता है तथा उससे भिन्न से व्यावर्तक होता है इस प्रकार से यह तटस्थ लक्षण कहा जाता है।
7. गन्धवत्व पृथ्वी का तटस्थलक्षण है।
8. उपनिषदों के द्वारा ही ब्रह्म का स्वरूपलक्षण तथा तटस्थलक्षण जाना जाता है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 11.2

1. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म इत्यादि।
2. लक्षण ही लक्ष्य का सभी ओर से व्यावर्तक होता है विशेषण ही विशेष्य रूप में सजातीय से व्यावर्तक होता है।
3. अरुणया पिङ्गाक्ष्या गवा एकहायन्या सोमं क्रीणाति इति।
4. जिस रुप में जो निश्चत है वह रूप यदि व्यभिचार को प्राप्त नहीं होता है तो वह सत्य कहलाता है इसप्रकार से वह अविकारी अर्थ वाला होता है।
5. ज्ञा धातु से भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करने पर ज्ञानपद की यहाँ पर निष्पत्ति होती है। कारण अनन्तरनिरपेक्ष होने पर स्वरूप को जो ज्ञान होता है वह ज्ञान पदार्थ कहलाता है।
6. लौकिक आनन्द ही मात्र ब्रह्मानन्द है इस प्रकार से श्रुति प्रतिपाद्य के अविरोध से यहाँ पर अभाव का आधिक्य तथा न्यूनता सम्भव नहीं होती है।
7. सत्यपद ब्रह्म का अनृत विकारों से विवर्तन कराता है।
8. ज्ञान पद जडता से ब्रह्म का व्यावर्तक होता है।
9. ब्रह्म की गुण क्रिया जाति तथा संबंध के रहित्व होने से शब्द वाच्यता सम्भव नहीं होती है।
10. सत्यत्ववादियों का स्वयं ही स्वयं की अपेक्षा धर्मधमीभाव कल्पना के द्वारा लक्ष्यलक्षणभाव कल्पित होता है।
11. आनन्द विषयानुभव नित्यत्व होते हुए धर्म कहलाते हैं तथा चैतन्य से अपृथक् होते हुए भी पृथक् के समान भासित होते है।
12. एकपद से ब्रह्म में सजातीय भेदनिरास तथा एव पद से स्वगत भेदनिरास, अद्वितीय पद से विजातीयभेदनिरास होता है।
13. वृक्ष का उसके सजातीय वृक्षान्तर भेद से सजातीय भेद होता है।
14. अवयवीयों का अपने अवयवों के साथ भेद ही स्वगत भेद कहलाता है। जैसे वृक्ष के उसके अवयवों पत्रपुष्पादि के साथ भेद स्वगत भेद कहलाता है।
15. ब्रह्म के अतिरिक्त द्वितीय का अभाव होने के कारण ब्रह्म में सजातीय तथा विजातीय भेद नहीं होता है।
16. ब्रह्म का निरवयत्व से ब्रह्म में स्वगतभेद नहीं होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 11.3

1. जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं। जिसके द्वारा उत्पन्न हुए जीवित रहते हैं। जिसके द्वारा सभी प्रकार की क्रीडाएं करते हैं। जिसकी जानने की इच्छा करनी चाहिए। वह ब्रह्म होता है इस प्रकार से श्रुतियों ने ब्रह्म के तट लक्षण का प्रतिपादन किया है।

ध्यान दें:

2. जन्माद्यस्य यतः।

3. जगज्जन्मादिकारणत्व।

4. कारण पद ही यहाँ पर कर्तृत्व अर्थ से युक्त होता है।

5. अविद्या के जगज्जन्मादिकारणत्व होने पर जडत्व होने पर जगत्कर्तृत्व भाव से अविद्या में अतिव्याप्ति नहीं होती है।

6. कौमुदी कारों के मत में वह जगज्जन्म स्थितियों में एक एक कारणत्व भी ब्रह्म का लक्षण हो सकता है।

7. कर्तृत्व तत्तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्व को कहते हैं।

8. निखिलजगत् उपादानत्व ब्रह्म का अपर तटस्थलक्षण है।

9. उपादानत्वं नाम जगदध्यासाधिष्ठानत्वं जगदाकारेण विपरिणममानमायाधिष्ठानत्वं वा।

10. ब्रह्म के जगद् व्यापकत्व से उसका उपादानत्व अङ्गीकार करना चाहिए। क्योंकि कारण ही कार्य में व्याप्त होता है इस नियम से।

11. ब्रह्म स्वचैतन्य प्रधानता से निमित्त तथा अज्ञानरूप उपाधि की प्रधानता से उपादान होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 11.4

1. ब्रह्म स्वरूप से निर्गुण होता है।

2. निर्गुण ब्रह्म प्रतिपादक श्रुतिवाक्य प्राकृत गुण रहितत्व वाले ब्रह्म का निषेध करते है तथा इस प्रकार से प्रतिपादन भी करते हैं।

3. ब्रह्म के स्वव्यापित्व से तथा निरवयवत्व से ब्रह्म में क्रिया को अङ्गीकार नहीं किया जाता है।

4. कर्तृत्वरूप गुणयोग के द्वारा ब्रह्म के प्रतिपादन से ब्रह्म सगुण कहलाता है।

5. सम्पूर्ण संसार का उपादान होने से तथा जगत् के अन्दर प्रविष्ट होने से उसका सर्वान्तर्यामित्व सिद्ध होता है।

6. निर्गुण ब्रह्म को ही जानना चाहिए।

7. नेह नानास्ति किञ्चन, अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्, यतो वाचो निवर्तन्ते इस प्रकार की श्रुतियों में निषेध मुख के द्वारा ब्रह्म के निर्देश का विधान किया गया है।